विज्ञापन।

यह सबको विदित ही है कि, काशीका 'निगमागम डिपो' नामक पुस्तकालय बहुत वर्षोंसे हिन्दू समाज हिन्दी संसारकी सेवा करता आया है। अब तक यह कालय श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दान भण्डार द्वारा स्थ होकर उसीके अधीन रहकर संचालित हो रहा था। सनातनधर्मावलम्बियोंकी सर्वाङ्गीण उन्नतिमें सह पहुँचानेके लिये १० लाख रुपयेके मूलधनसे 'धर्म सिण्डिकेट लिमिटेड' नामक एक कम्पनी संस्थापि उसके अन्यान्य उद्देश्योंमें दो लाख रुपये लगाकर एक जातीय भण्डार स्थापित करना भी एक उद्देश्य है। कम्पनीने अपनी इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उक्त नि बुकडिपोको दानभण्डारसे ले लिया है, और उसका न बदलकर 'निगमागम बुकडिपो' ही कायम रक्खा है। इस बुकडिपो विभाग द्वारा धार्मिक, सामाजिक और देश सम्बन्धीय अनेक पुस्तकें प्रधानतः हिन्दीमें और अंग्रेजी अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओंमें शीघ्र प्रकाशित होंगी।

नोट—इस पुस्तकके पिछले पृष्ठोंमें विज्ञापन द्रष्टव्य

श्रीतत्सत्।

चतुर्दशलोक रहस्य *।

मनुष्य पश्वादि जीवजन्तुओंसे पूर्ण यह पृथिवी ग्रह तथा ज्योतिःकेन्द्रस्वरूप सूर्य्यके द्वारा प्रकाशमान, नाना जीवोंसे सुशोभित मङ्गल, वुध, बृहस्पति, शुक्रादि ग्रह और चन्द्रादि उपग्रह समूहकी समष्टि ही चतुर्दशलोकनामसे आर्य्यशास्त्रमें विख्यात है, अथवा स्थूल जीवोंके अतिरिक्त देवशरीरधारी दैवजीवोंसे व्याप्त, स्थूल ग्रहोंके अतिरिक्त अतीन्द्रिय सूक्ष्मोपादानसे निर्मित सूक्ष्म लोकोंको ही चतुर्दश लोक या चतुर्दश भुवन कहते हैं, अथवा स्थूल सूक्ष्म दोनों प्रकारके जीव तथा लोकोंकी ही चतुर्दश लोक संज्ञा की गयी है, इस विषयमें अनेक प्रकारके मतभेद तथा वादानुवाद देखनेमें आते हैं और श्रीमद्भागवत, देवीभागवत, मार्कण्डेयपुराण आदि पुराण ग्रन्थोंमें जम्बु प्लक्ष आदि द्वीप, भूर्भुवः स्वरादि ऊर्द्ध्वलोक तथा अतलवितलादि अधोलोकोंके ऐसे अनेक विचित्र वर्णन देखनेमें आते हैं, जिनका वर्त्तमान भौगोलिक वर्णनोंके साथ कुछ भी सामञ्जस्य नहीं पाया जाता। इस लिये प्रकृत प्रवन्धमें चतुर्दश लोकोंपर समीक्षा करते हुए ऊपर कथित

---

* यह लेख महामण्डल द्वारा प्रकाशित श्रीधर्मकल्पद्रुम नामक ग्रन्थके सातवें खण्डमें प्रकाशित होगा। सर्वसाधारणके उपकारार्थ पृथक् प्रकाशित किया जाता है।

परस्पर विरुद्धरूपसे प्रतीयमान नाना प्रकारके वर्णनवैचित्र्यका समाधान तथा सामञ्जस्य विधान किया जायगा ।

आर्य्यशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि, समस्त स्थूल पदार्थ उसके सूक्ष्म प्रतीकके ही परिणाम तथा विकाशमात्र हैं। अतिसूक्ष्म कारण शरीरसे ही सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होता है और स्थूलशरीर भी सूक्ष्मशरीरका विकाशमात्र है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरोंके मूलमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवात्माकी सत्ता है। अतः स्थूलके मूलमें सूक्ष्मके होनेसे आर्यशास्त्रमें सृष्टितत्त्वका सभी वर्णन स्थूलसूक्ष्ममय देखनेमें आता हैं। दैवजगत् स्थूलजगत्की अपेक्षा सूक्ष्म है, स्थूलजगत्की समस्त क्रिया दैवाधीन है। इसी कारण पूज्यपाद महर्षियोंने स्थूल मृत्युलोकके वर्णनके साथ सूक्ष्म दैवलोकोंका भी वर्णन किया है। चतुर्दश लोक इन्हीं स्थूल सूक्ष्म दोनों प्रकारके भुवनोंकी समष्टिसे बना हुआ है। इस लिये केवल सूक्ष्म लोकोंको या केवल स्थूल ग्रहोपग्रहोंको चतुर्दश लोक न कह कर स्थूल सूक्ष्म दोनों प्रकारके लोकोंका उसमें समावेश करना आर्य-शास्त्रसम्मत होगा। एक दृष्टान्तके द्वारा इस वैज्ञानिक तथ्यको समझ सकते हैं। भारतवर्षकी उत्तर सीमामें हिमालय पर्वत है। हिमालय पर्वत एक स्थूल वस्तु है। तथापि देवीको हिमालय-दुहिता और हिमालयान्तर्गत कैलाशशिखरको शिवका स्थान करके क्यों आर्यशास्त्रमें वर्णन देखनेमें आता है? स्थूलदृष्टिके द्वारा अन्वेषण करनेसे हिमालयमें न देवी ही मिलती हैं और

न शिवजी ही मिलते हैं। इस प्रकारका वर्णन स्थूलजगत् तथा सूक्ष्मजगत्के वर्णन-समन्वयके सिवाय और कुछ भी नहीं है। ब्रह्मके सत्, चित्, आनन्दरूपी त्रिविध सत्ताओंमेंसे विष्णुमें चित्सत्ता, ब्रह्मामें आनन्दसत्ता और शिवमें सत्सत्ता-का प्राधान्य है। सत्सत्ताके साथ स्थूल विश्वका सम्बन्ध होनेसे स्थूल पृथिवीमें सर्वोच्च तथा सर्वप्रधान, सर्वरत्नगर्भ-स्थान हिमालयको ही सत्सत्ताके अधिनायक शिवका स्थान कहा गया है। और सत्की स्त्री सती देवीकों शिवगेहिनी तथा हिमालयदुहिता कहा गया है। यही कारण है कि, भारतवर्षके स्थूल भौगोलिक वर्णनोंके साथ महर्षियोंने देवतात्मा हिमालय तथा पार्वती और देवादिदेव महादेवके भी अधिदैव सम्बन्धका वर्णन किया है। यही कारण है कि, महर्षियोंने स्थूल वसुन्धराका वर्णन करते हुए भी असुरभारा-क्रान्ता वसुमती देवीका करुणक्रन्दन तथा ब्रह्मादिकी शरण लेनेका भी वृत्तान्त बताया है। यही कारण है कि, स्थूल चन्द्रग्रहके वर्णनके साथ साथ आर्यशास्त्रमें मनोऽधिष्ठात्री चन्द्र-देवता तथा स्थूल सूर्य्यग्रहके वर्णनके साथ साथ बुद्ध्यधिष्ठात्री सूर्य्यदेवताका भी वर्णन देखनेमें आता है। अतः चतुर्दश भुवनों-के विषयमें आर्य्यशास्त्रमें जो कुछ वर्णन देखनेमें आते हैं उनको केवल स्थूल भौगोलिकदृष्टिसे देखनेपर कदापि तथ्य निर्णय नहीं हो सकेगा। स्थूलदृष्टि तथा अतीन्द्रिय दैवी दृष्टि दोनोंकी सहायता लेनेपर तभी पुराणादि वर्णित चतुर्दश लोकोंका

रहस्य पूर्ण परिज्ञात हो सकेगा, इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है। अब नीचे पृथिवी आदिके विषयमें कुछ पुराणोक्त वर्णन देकर भौगोलिक वर्णनोंके साथ उनका सामञ्जस्य किया जाता है।

श्रीमद्भागवतका पञ्चम स्कन्ध, देवीभागवतका अष्टम स्कन्ध, मार्कण्डेय पुराण, महाभारत आदि ग्रंथोंमें सप्तद्वीप सप्तसमुद्रमय विचित्र भुवनकोशके भूरिभूरि वर्णन देखनेमें आते हैं, जिनमेंसे कुछ वर्णन स्थूल पृथिव्यादि लोक-सम्बन्धीय हैं और कुछ वर्णन पृथिव्यादिसे सम्बन्धयुक्त दैवलोक सम्बन्धीय हैं। यथा देवीभागवत्में :—

रथनेमिसमुत्थास्ते परिखाः सप्तसिन्धवः ।
यत आसंस्ततः सप्त भुवो द्वीपा हि ते स्मृताः ॥
जम्बुद्वीपः प्लक्षद्वीपः शाल्मलीद्वीपसंज्ञकः ।
कुशद्वीपः क्रौञ्चद्वीपः शाकद्वीपश्च पुष्करः ॥
तेषां च परिमाणं तु द्विगुणं चोत्तरोत्तरम् ।
समन्ततश्चोपक्लृप्तं वहिर्भागक्रमेण च ॥
क्षारोदेक्षुरसोदौ च सुरोदश्च घृतोदकः ।
क्षीरोदो दधिमण्डोदः शुद्धोदश्चेति ते स्मृताः ॥

प्रियव्रत राजाके रथचक्राघात द्वारा जो सात खाई उत्पन्न हुई थीं, वे ही सप्तसिन्धु बन गईं और उसी सप्त समुद्रवेष्टित सप्तद्वीप भुवनकोशमें विद्यमान हैं, जिनके नाम जम्बु, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर हैं। वे सप्तद्वीप उत्तरोत्तर द्विगुणित परिमाणके हैं और क्रमशः सात समुद्रके द्वारा वेष्टित हैं, जिनके नाम लवणसमुद्र, इक्षुरस-

समुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, क्षीरसमुद्र, दधिसमुद्र और शुद्धजलसमुद्र हैं। जम्बुद्वीप लवणसमुद्रके द्वारा वेष्टित है, सप्तद्वीप इक्षुरससमुद्रके द्वारा, शाल्मलीद्वीप सुरासमुद्र द्वारा, कुशद्वीप घृतसमुद्र द्वारा, क्रौञ्चद्वीप क्षीरसमुद्र द्वारा, शाकद्वीप दधिसमुद्र द्वारा और पुष्करद्वीप जलसमुद्र द्वारा वेष्टित है, ऐसा प्रमाण देवीभागवतके उसी स्कन्धमें मिलता है। लवण-समुद्रवेष्टित जम्बुद्वीपके विषयमें देवीभागवत तथा श्रीमद्भाग-वतमें लिखा है कि, जम्बुद्वीपमें इलावृतवर्ष, कुरुवर्ष, हरिवर्ष आदि नौ प्रकारके वर्ष हैं, उनमेंसे भारतवर्ष भी एक प्रधान वर्ष है। इन सब वर्णनोंसे प्रतीत होता है कि, जम्बुद्वीप ही पृथिवीस्थानीय है, क्योंकि लवणसमुद्रके द्वारा पृथिवी ही वेष्टित है और भारतवर्ष भी पृथिवीमें ही है। सप्त, कुश, शाल्मली आदि द्वीपोंके जिस प्रकार वर्णन देखनेमें आते हैं, उससे देवलोकोंके साथ उनका सम्बन्ध स्पष्ट प्रतीत होता है, क्योंकि उनमें वर्णित समुद्र, नदी, वृक्ष, पर्वत तथा जीव-समूहका कोई भी प्रमाण प्रत्यक्ष भूगोल विद्या द्वारा सिद्ध नहीं होता है। और श्रीभगवान वेदव्यासने भी योगदर्शन ग्रन्थमें लिखा है कि,—"सर्वेषु द्वीपेषु पुण्यात्मानो देवमनुष्याः प्रतिवसन्ति" अर्थात् सातों द्वीपोंमें पुण्यात्मा देवतागण तथा मनुष्यगण निवास करते हैं। जम्बुद्वीपमें भी जो नौ प्रकारके वर्षोंका वर्णन देखनेमें आता है, उनमेंसे भी भारतवर्षको छोड़ और सभी वर्ष देवलोकसे सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि

श्रीमद्भागवतके वर्णनोंके द्वारा ऐसा ही उसके विषयमें सिद्धान्त स्थिर होता है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है :—

"तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट-वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमस्वर्ग-पदानि व्यपदिशन्ति। भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवः। मलयो मैनाकस्त्रिकूटः सह्यो विन्ध्यो गोवर्द्धनो रैवतको नील इति चान्ये शतसहस्रशः शैला-स्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसंख्याताः। एता-सामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्ती नामात्मना चोपस्पृशन्ति ताम्रपर्णी कावेरी तुङ्गभद्रा गोदावरी तापी नर्मदा चर्मण्वती महानदी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू शतद्रुश्चन्द्रभागावितस्ता इति महा-नद्यः। अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहित-कृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्वथ आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति।"

जम्बुद्वीपान्तर्गत नौ वर्षोंमेंसे भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र है, बाकी आठ वर्ष भौमस्वर्ग कहलाते हैं, जिनमें स्वर्गवासिगण पुण्यशेष भोगके लिये निवास करते हैं। भारतवर्षमें नदी, पर्वत अनेक हैं, यथा—मलय, मैनाक, त्रिकूट, सह्य, विन्ध्य, गोवर्धन, रैवतक आदि शत शत पर्वत हैं और ताम्रपर्णी,

कावेरी, तुङ्गभद्रा, गोदावरी, तापी, नर्मदा, चर्मण्वती, महानदी, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, शतद्रु, चन्द्रभागा, वितस्ता आदि असंख्य नदियां हैं। इसी भारतवर्षमें जन्मलाभ करके सात्त्विक राजसिक तथा तामसिक कर्मानुसार मनुष्योंको यथाक्रम दिव्यगति, मानुषगति और निरयगति प्राप्त होती है और पुण्यविपाकसे ज्ञान द्वारा अपवर्ग भी प्राप्त होता है। इन सब वर्णनोंसे वर्तमान भारतके साथ पुराणवर्णित भारतवर्षकी सम्पूर्ण एकता सिद्ध होती है और इसी विचारसे जम्बुद्वीपके साथ पृथिवीका भी सम्बन्ध स्पष्ट प्रतीत होता है। जम्बुद्वीपके विषयमें श्रीमद्भागवतमें और भी लिखा है। यथाः—

"जम्बुद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्र आवर्त्तनो रमणको मन्दहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लंकेति"

जम्बुद्वीपके अन्तर्गत आठ उपद्वीप भी हैं, उनके नाम स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्त्तन, रमणक, मन्दहरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल और लङ्का हैं। इनमेंसे सिंहल और लङ्काके नाम तो अब तक भी वही हैं, शेषोंके नाम कालानुसार बदल दिये गये होंगे। अतः यह भी वर्णन प्रत्यक्ष भौगोलिक वर्णनोंके साथ ठीक ठीक मिलता है।

इलावृतादि वर्षोंके विषयमें देवीभागवतमें लिखा है—

यदुपस्पर्शिनो देवा योगैश्वर्याणि विन्दते
देवोद्यानानि चत्वारि भवन्ति ललनासुखाः॥

नन्दनं चैत्ररथकं वैभ्राजं सर्वभद्रकम्।
येषु स्थित्वाऽमरगणा ललनायूथसंयुताः॥
उपदेवगणैर्गीतमहिमानो महाशयाः।
विहरन्ति स्वतन्त्रास्ते यथाकामं यथासुखम्॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें भी लिखा हैः—

देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति। येष्वमरपरिवृताः सह सुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विरहन्ति।

इलावृतादि वर्षोंमें नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वभद्रक नामक चार देवोंद्यान हैं। इनमें ऊपर कथित भौमस्वर्गवासी पुण्यशेषभोक्ता देवतागण देवललनाओंके साथ स्वच्छन्द विहार करते हैं। उपदेवगण इनकी महिमा गान करते रहते हैं। अतः भारतवर्षके सिवाय और आठ वर्ष देवलोकसे सम्बन्ध रखते हैं, यह सिद्धान्त प्रमाणित हुआ। जम्बुद्वीपके साथ पृथिवीका किस प्रकार सम्बन्ध है, सो पहले ही बताया गया है। यही भुवनकोशान्तर्गत उपद्वीप द्वीप तथा वर्षोंके साथ सूक्ष्मलोक तथा प्रत्यक्ष भूगोलसिद्ध पृथिवीग्रहका वर्णन-सामञ्जस्य है। अतःपर स्थूलसूक्ष्मलोकसमन्वित चतुर्दश भुवनोंका वर्णन क्रमशः नीचे किया जाता है।

आर्य्यशास्त्रमें ब्रह्माण्डमय विराट् पुरुषका वर्णन करते समय उनके नाभिदेशसे ऊपरके अंशमें सात ऊर्द्ध्वलोक तथा नाभिसे निम्नदेशोंमें सात अधोलोकोंका स्थान बताया गया है। यथा श्रीशम्भुगीतामें :—

मम ब्रह्माण्डरूपस्य विराड्देहस्य कल्पदाः।
लोकाः सप्तोर्द्ध्वगा नाभिमुपर्य्युपरि सन्त्यहो॥
अधोऽधः सप्त वर्त्तन्ते ध्रुवं नाभिश्च संस्थिताः॥
अतः समष्टिरूपेऽस्मिन् ब्रह्माण्डे वै चतुर्दश।
भुवनानि प्रधानानि विद्यन्ते नात्र संशयः॥

ब्रह्माण्डरूपी विराट् शरीरके नाभि या कटिदेशसे ऊपर सात लोक और नीचे सात लोक इस प्रकारसे चतुर्दश लोकों-की कल्पना की गयी है। श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धके पञ्चमाध्यायमें वर्णन है :—

स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः।
सहस्रोर्व्वङ्घ्रि बाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान्॥
यस्येहावयवैर्लोकान् कल्पयन्ति मनीषिणः।
कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्द्ध्वं जघनादिभिः॥
भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः।
हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः॥
ग्रीवायां जनलोकोऽस्य तपोलोकः स्तनद्वयात्।
मूर्द्धभिः सत्यलोकश्च ब्रह्मलोकः सनातनः॥

तत्कट्याश्चातलं क्लृप्तमुरुभ्यां वितलं विभोः ।
जानुभ्यां सुतलं शुद्ध जङ्घाभ्याञ्च तलातलम् ॥
महातलन्तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ।
पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥

सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद, सहस्रबाहु विराट् पुरुषने अण्ड अर्थात् ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति की। मनीषिगण उनके कटिदेशसे अधोभागमें सप्त अधोलोक और जंघाके ऊद्र्ध्वभागमें सप्त ऊद्र्ध्वलोककी कल्पना करते हैं। भूर्लोक नाभिके आस पास है, भुवर्लोक नाभिसे ऊपरकी ओर है, हृदयदेशमें स्वर्लोक है, वक्षस्थलमें महर्लोक, गलेमें जनलोक, स्तनोंके ऊपर तपोलोक और मस्तकमें सत्यलोककी कल्पना की जाती है। इसी प्रकारसे कटिदेशमें अतललोक, उरुदेशमें वितललोक, जानुदेशमें सुतललोक, जंघाओंमें तलातललोक, गुल्फोंमें महातललोक, पांवमें रसातललोक, और चरणतलमें पाताललोककी कल्पना की जाती है। अतः भूः, भुवः, स्वः, महः, जन, तपः और सत्य ये सात ऊद्र्ध्वलोक तथा अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ये सात अधोलोक इस प्रकारसे चतुर्दश लोक हुए। इनमेंसे भूर्लोक-के अन्तर्गत चार लोक हैं, यथा—मृत्युलोक, प्रेतलोक, नरक-लोक और पितृलोक। प्रेतलोक, नरकलोक तथा पितृलोकके विषयमें श्रीधर्मकल्पद्रुम खण्ड ७ के 'परलोक समीक्षा' नामक अध्यायमें कहा जायगा। मृत्युलोक भूर्लोकका चतुर्थांश है और

चतुर्दश भुवनके एक चतुर्दशांशका भी एक चतुर्थांश है। इसीमें मनुष्यादि पाञ्चभौतिक स्थूलशरीरविशिष्ट जीवगण उत्पन्न होकर नरक, स्वर्ग, प्रेत, पितृ, देवता, असुरादि भिन्न भिन्न लोकोंमें कर्मभोगके लिये जाया आया करते हैं और इसी प्रकार जीवोंका आवागमनचक्र बना रहता है। अतः निश्चय हुआ कि, चतुर्दश लोकोंमेंसे यह मृत्युलोक ही स्थूल है, बाकी सभी ऊर्द्ध्व तथा अधोलोक सूक्ष्म हैं। अब नीचे इन सब सूक्ष्म लोकोंकी स्थितिके विषयमें क्रमशः वर्णन किया जाता है।

सूक्ष्म लोकोंकी स्थिति स्थूल लोकोंकी तरह देशपरिच्छिन्न नहीं है; अर्थात् जिस प्रकार पृथिवी आदि स्थूल लोकान्तर्गत ग्रहोंकी स्थूल सीमा है और एककी सीमाके भीतर दूसरा नहीं रह सकता है, अतल, वितलादि अधोलोक तथा भुवः स्वरादि ऊर्द्ध्वलोकोंकी इस प्रकार स्थूल सीमा नहीं है। इनकी स्थिति केवल सूक्ष्मताके तारतम्यानुसार ही है और इस कारण एक अति सूक्ष्मलोक उससे कम सूक्ष्म किसी दूसरे लोकके भीतर अनायास ही रह सकता है। जिस प्रकार जीवदेहमें स्थूलशरीरके भीतर ही सूक्ष्मशरीर रहता है और सूक्ष्मशरीरके भीतर ही अति सूक्ष्म कारण शरीर रहता है तथा इसी प्रकारके पञ्चकोषमय जीवदेहमें अन्नमय कोषके भीतर ही प्राणमय कोष रह सकता है और प्राणमय कोषके भीतर ही मनोमय, विज्ञानमय आदि कोषोंकी अनायास स्थिति हो सकती है, इनके लिये अलग अलग देशावच्छिन्न सीमाओंकी

कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं होती है, ठीक उसी प्रकार एक सूक्ष्मलोकके साथ अन्य सूक्ष्मलोकका देशावच्छेदसे कोई भी सीमा निर्देश नहीं है और आवश्यकतानुसार एक दूसरेके भीतर रह भी सकते हैं। द्वितीयतः समष्टि और व्यष्टिरूपसे ब्रह्माण्ड और पिण्डके एकत्व सम्बन्धसे युक्त होनेके कारण जिस प्रकार चतुर्दश लोकोंकी स्थिति ब्रह्माण्डमें है,इसी प्रकार पिण्डदेहमें भी चौदह लोकोंकी स्थिति है और जिस प्रकार पिण्डदेहमें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्द-मय इन पांचकोषोंकी स्थिति है, उसी प्रकार ब्रह्माण्डमें भी पञ्चकोषोंकी स्थिति है। इस लिये सूक्ष्मलोकमें रहनेवाले दैवजगत्के जीव तथा देवता असुरादिका सम्बन्ध और प्रभाव प्रत्येक पिण्डशरीरपर भी है और पिण्डदेहान्तर्गत प्राणमय, मनोमयादि कोषोंकी सहायतासे तत्तत् कोषोंसे सम्बन्ध रखनेवाले दैवजगत्के जीव तथा देवासुरादियोंके साथ भी स्थूललोकके जीव नानाप्रकारका सम्बन्ध स्थापन कर सकते हैं। पुराणादि शास्त्रोंमें जो मृत्युलोकके जीवोंके साथ इन्द्र-लोक, वरुणलोक आदि लोकोंका तथा तत्तत् लोकवासी इन्द्र, वरुण, कुवेर आदि देवताओंके साथ नानाप्रकारके आदान प्रदानका वृत्तान्त देखनेमें आता है, ऊपर कथित ब्रह्माण्ड पिण्डकी एकता तथा पञ्चकोषका विस्तार ही इसमें कारण स्वरूप है। यही पिण्डशरीरमें प्राणमयादि सूक्ष्म कोषोंकी स्थितिके सदृश ब्रह्माण्डशरीरमें उन्नतावनत चतुर्दश लोकोंकी

स्थिति है। अतःपर इनके पृथक् पृथक् अधिवासियोंके विषयमें कहा जाता है।

संघर्षके विना क्रिया नहीं होती, परस्पर विरोधी शक्तियों-के घात प्रतिघातसे ही संघर्षकी उत्पत्ति हुआ करती है, इस लिये चतुर्दश लोकव्यापिनी क्रियाके भीतर भी परस्पर विरो-धिनी शक्तिद्वयका संघर्ष अवश्य विद्यमान है। इन दोनों शक्तियोंको आर्य्यशास्त्रमें दैवी शक्ति तथा आसुरी शक्ति कहा गया है। यथा बृहदारण्यकोपनिषद्में—

"द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च त एषु लोकेष्वस्पर्द्धन्त"।

प्रजापतिकी सृष्टिमें देवता और असुर दोनोंका नित्य संग्राम है। वे चतुर्दशलोकमय ब्रह्माण्डशरीर तथा पिण्डशरीर दोनोंमें ही व्याप्त रहते हैं, यथा-श्रीशम्भुगीतामें :—

संस्थापयितुमर्हन्ति स्वाधिपत्यं स्वधाभुजः।
देवासुरगणाः सर्वे जीवपिण्डेष्वनुत्तमम्॥

चतुर्दशलोकव्यापी देवता तथा असुरगण सदा ही जीव शरीरमें अपने प्रभावको जमा सकते हैं। देवता और असुर नाना श्रेणिके होते हैं। उनके निवासस्थानके विषयमें शम्भु-गीतामें लिखा है :—

वसन्ति देवाः पितरः! ऊर्द्ध्वलोकेषु सप्तसु।
सन्तिप्रन्देऽसुराः सर्वे ह्यधोलोकेषु सप्तसु॥

तमोमुख्यतया सृष्टेरसुराणां हि सप्तमे ।
लोकेऽस्त्यसुरराज्यस्य राजधानी त्वधस्तने ॥
दैव्याः सत्त्वप्रधानत्वात् सृष्टे राजानुशासनम् ।
उच्चै दैवेषु लोकेषु नैवावश्यकमस्त्यहो ॥
अस्त्यतो देवराजस्य राजधानी तृतीयके ।
ऊर्द्ध्वलोके स्थिता नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥
विशेषतोऽसुराः सर्वे सदा प्राबल्यसञ्जुषः ।
कुर्वाणा विप्लवं दैवे राज्ये सृष्टेः प्रबाधितुम् ॥
सामञ्जस्यं विचेष्टन्ते नितान्तं सन्ततं बहु ।
अतोऽपि देवराजस्य राजधानी तृतीयके ॥

ऊर्द्ध सप्त लोकोंमें देवताओंका निवास है और अधः सप्त लोकोंमें असुरोंका निवास है। असुरगणकी सृष्टि तमःप्रधान होनेसे असुरराजकी राजधानी सप्तम अधोलोक अर्थात् पातालमें स्थित है। परन्तु दैवी सृष्टि सत्त्वप्रधान होनेके कारण और उन्नत दैवलोकोंमें राजानुशासनकी आवश्यकता न रहनेसे देवराजकी राजधानी तृतीय ऊर्द्ध्वलोक अर्थात् स्वर्गलोकमें स्थित है। विशेषतः असुरगण सदा प्रबलता लाभ करके दैवराज्यमें विप्लव करते हुए सृष्टि-सामञ्जस्यमें बाधा डालनेमें सचेष्ट रहते हैं, इस कारणसे भी देवराजकी राजधानी सदा तृतीय ऊर्द्ध्वलोकमें स्थित रहती है। देवता और असुरोंकी प्रकृतिमें यह भी एक विशेष अन्तर

है कि, देवतागण अपनी राज्यसीमाको अतिक्रम करके असुरोंके राज्यपर कभी आक्रमण नहीं करते हैं, क्योंकि न्याय-पथावलम्बी, धर्मपरायण देवतागण यह भलीभाँति जानते हैं, कि, देवराज्य तथा असुरराज्यके अधिकारिगण जब तक नियमपूर्वक अपने अपने राज्यका सुशासन तथा परिचालन करेंगे और निरर्थक अनधिकार प्रवेशसे निवृत्त रहेंगे, तभी तक ब्रह्माण्डभाण्डमें शान्तिसुधा सुशोभित रहेगी। इसी कारण देवतागण कभी असुरलोकोंपर आक्रमण नहीं करते हैं। किन्तु असुरोंकी बुद्धि दम्भ दर्प अभिमान अहंकार अज्ञानमयी होनेके कारण वे सदा ही दैवराज्यपर अधिकार जमाकर देवताओंको कष्ट देने तथा विश्वप्रकृतिकी शासन-शृंखलाके विगाड़नेमें कटिबद्ध रहते हैं। किन्तु इस प्रकारके अत्याचारमें वे तभी सफल हो सकते हैं जब भोगादि द्वारा देवताओंकी बुद्धिपर तमोगुणका आवेश हो जाय और तपःक्षयके द्वारा उनका बलक्षय तथा सत्त्वगुणका अपलाप होने लग जाय। श्रीमद्भागवतमें लिखा है :—

एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते ।
असुराणाञ्च रजसि तमस्युद्धव! रक्षसाम् ॥

सत्त्वगुणकी वृद्धिमें देवताओंका बल बढ़ता है, रजोगुणकी वृद्धिमें असुरोंका बल बढ़ता है और तमोगुणकी वृद्धिमें राक्षसोंका बल बढ़ता है, इस प्रकार गुणवैचित्र्यानुसार

देवासुरोंकी बलवृद्धि तथा सूक्ष्मजगत्‌में कोलाहल और संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। परन्तु इन सब कोलाहलोंकी भूमि ऊर्द्ध्व तृतीय लोक तक ही है, इससे परे विशेष सत्त्वगुण-प्रधान महर्लोक जनलोकादिमें अन्य गुणोंकी विकाशसम्भावना न रहनेसे उन लोकोंमें न तो असुरोंका ही प्रवेश हो सकता है और न प्रथम तीन उन्नत लोकोंकी तरह वहाँ पर राजानुशासन, शब्दानुशासनकी शृंखला बाँधनेका प्रयोजन रहता है। यथा-श्रीशम्भुगीतामें :—

उन्नतेषूर्द्ध्वलोकेषु प्रवेशोऽप्यसुरस्यसम्भवः।
असुराणामतोऽप्येषु देवराजानुशासनम् ॥
नावश्यकत्वमाप्नोति विशेषेण कदाचन।
विभिन्नोपासकेभ्यो हि स्वरूपं सगुणं धरन् ॥
सालोक्यञ्चैव सामीप्यं सारूप्यं पितरस्तथा।
दातुं मोक्षं च सायुज्यं नानारूपैर्हि सप्तमे ॥
ऊर्द्ध्वलोके तथा षष्ठे विराजेऽहमनुत्तमम्।
उन्नतेषूर्द्ध्वलोकेषु सात्त्विकेषु स्वधाभुजः ॥
राजानुशासनस्यातः का वार्ता वर्त्तते खलु।
शब्दानुशासनस्यापि नास्ति तेषु प्रयोजनम् ॥

उन्नत ऊर्द्ध्वलोकोंमें असुरोंका भी प्रवेश संभव नहीं है, इस कारण वहाँ देवराजके राजानुशासनकी विशेष आवश्यकता नहीं रहती। अन्तिम दो लोक अर्थात् षष्ठ और सप्तम ऊर्द्ध्व लोकोंमें परमात्माके उपासकोंको सालोक्य, सामीप्य,

सारूप्य तथा सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है। इस कारण उनमें राजानुशासनकी बात ही क्या है, शब्दानुशासनकी भी वहाँ पर आवश्यकता नहीं होती। इन दोनों प्रकारकी देवयोनियोंके अतिरिक्त और भी बहुत प्रकारकी देवयोनियाँ हैं, जो इन लोकोंमें बसती हैं। उनमेंसे ऋषि और पितृगण प्रधान हैं। कर्मराज्यके चलानेवाले देवता कहाते हैं, ज्ञानराज्यके चलानेवाले ऋषि कहाते हैं और प्रत्येक ब्रह्माण्डके स्थूलराज्यके चलानेवाले पितृ कहाते हैं। देवता लोग ऊर्द्ध्व सप्तलोकोंमें बसते हैं। ऋषि लोग चौदह लोकोंमें बसते हैं, क्योंकि असुरोंमें भी अपने अधिकारानुसार ज्ञान होता है, जिसके चलानेवाले शुक्राचार्य्य आदि असुरगुरु ऋषिलोग हैं। पितृगण केवल पितृलोकमें बसते हैं। ऋषि, देवता, पितरोंका निवासस्थान तथा उनकी श्रेणी और कार्य्यकलापके विषयमें धर्मकल्पद्रुमके ऋषि देवपितृनामक अध्यायमें पहले ही बहुत कुछ कहा जाचुका है। अतः इस विषयमें पुनरुक्ति न करके नीचे सप्त अधोलोक तथा सप्त ऊर्द्ध्व लोकोंमेंसे किस किसमें कैसे कैसे जीव और देवासुर बसते हैं, सो ही क्रमशः बताया जाता है। देवीभागवतके अष्टम स्कन्धमें लिखा है :—

अधस्तादवनेः सप्त देवर्षे विवराः स्मृताः।
एकैकशो योजनानामायामाच्छ्रायतः पुनः॥

अयुतान्तरविख्याताः सर्वर्तुसुखदायकाः ।
अतलं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं वितलं तथा ॥
तृतीयं सुतलं प्रोक्तं चतुर्थं वै तलातलम् ।
महातलं पञ्चमञ्च षष्ठं प्रोक्तं रसातलम् ॥
सप्तमं विप्र पातालं सप्तैते विवराः स्मृताः ।
एतेषु विलस्वर्गेषु दिवोऽप्यधिकमेव च ॥
कामभोगैश्वर्यसुखसमृद्धभुवनेषु च ।
नित्योद्यानविहारेषु सुखास्वादः प्रवर्त्तते ॥
दैत्याश्च काद्रवेयाश्च दानवा बलशालिनः ।
नित्यं प्रमुदिता रक्ताः कलत्रापत्यबन्धुभिः ॥
निवसन्ति सदा हृष्टाः सर्वर्तुसुखसंयुताः ॥

भूर्लोकके अधोभागमें सप्त विवर हैं, जिनको सात अधोलोक कहते हैं । इनमेंसे प्रथम लोकका नाम अतल, द्वितीयका नाम वितल, तृतीयका नाम सुतल, चतुर्थका नाम तलातल, पञ्चमका नाम महातल, षष्ठका नाम रसातल और सप्तमका नाम पाताल है । इन लोकोंमें कामादि विषयभोग स्वर्गसे भी अधिक है । बलवान् दैत्य दानवगण पुत्रकलत्रादिके साथ इनमें सदा विहार करते हैं । यही सप्त अधोलोकका साधारण स्वरूप है । अब इनमेंसे एक एकका वर्णन किया जाता है । प्रथम अधोलोकके विषयमें देवीभागवतमें लिखा है :—

प्रथमे विवरे विप्र अतलाख्ये मनोरमे ।
मयपुत्रो बलो नाम वर्त्ततेऽखर्वगर्वकृत् ॥

षण्णवत्यो-येन सृष्टा मायाः सर्वार्थसाधिकाः ।
जृम्भमाणस्य यस्यैव वनस्य बलशालिनः ॥
स्त्रीगणा उपपद्यन्ते त्रयो लोकविमोहनाः ।
पुंश्चल्यश्चैव स्वैरिण्यः कामिन्यश्चेति विश्रुताः ॥
या वै विलायनं प्रेष्ठं प्रविष्टं पुरुषं रहः ।
संलापविभ्रमाद्यैश्च रमयन्त्यपि ताः स्त्रियः ॥
यस्मिन्युपयुक्ते जनो मनुते बहुधा स्वयम् ।
ईश्वरोऽहमहं सिद्धो नागायुतबलो महान् ॥
आत्मानं मन्यमानः सन्मदान्ध इव कथ्यते ।
एवं प्रोक्ता स्थितिश्चात्र अतलस्य च नारद ॥

प्रथम अधोलोकका नाम अतल है। उसमें मयदानवके पुत्र बलदानव बसते हैं। उन्होंने ६ प्रकारकी मायाकी सृष्टि की है। उनकी जिम्हाईसे पुंश्चली, स्वैरिणी, कामुकी स्त्रियाँ उत्पन्न होती हैं, जो उनके पास आये हुए पुरुषोंको नाना विलासकला द्वारा मुग्ध करती रहती हैं। अतललोकवासिगण बड़े मदान्ध होते हैं और अपनेको सिद्ध, बलवान्, ईश्वर समझते हैं। यही अतललोककी स्थिति है। द्वितीय लोकके विषयमें देवीभागवतमें लिखा है:—

भूतलाधस्तले चैव वितले भगवान् भवः ।
हाटकेश्वरनामाऽयं स्वपार्श्वदगणैर्वृतः ॥

प्रजापतिकृतस्यापि स्वर्गस्य बृंहणाय च ।
भवान्या मिथुनीभूय आस्ते देवाधिपूजितः ॥
भवयो वीर्यसम्भूता हाटकी सरिदुत्तमा ।
समिद्धो मरुता वह्निरोजसा पिवतीव हि ॥
तन्निष्ठ्युतं हाटकाख्यं सुवर्णं दैत्यवल्लभम् ।
दैत्याङ्गना भूषणार्हं सदा संधारयन्ति हि ॥

अतललोकके नीचे वितललोक है । इसमें दैत्यगण, उनकी स्त्रियाँ तो रहती ही हैं, अधिकन्तु हाटकेश्वर महादेव अपने पार्श्वचरोंके साथ वहाँपर निवास करते हैं और भवानीके संसर्गसे प्रजापतिकी सृष्टिकी वृद्धि करते हैं। उनके वीर्यसे वहाँपर हाटकी नामक नदी निकली है, उनके निष्ठीवनसे सुवर्ण उत्पन्न होता है, जिससे भूषण बनाकर असुरकामिनी-गण धारण करती हैं। इसके नीचे सुतललोक है । यथा देवीभागवतमें:—

तद्विलाधस्तलात् प्रोक्तं सुतलाख्यं विलेश्वरम् ।
पुण्यश्लोको बलिर्नामा आस्ते वैरोचनिर्मुने ॥
महेन्द्रस्य च देवस्य चिकीर्षुः प्रियमुत्तमम् ।
त्रिविक्रमोऽपि भगवान् सुतले बलिमानयत् ॥
एवं दैत्यपतिः सोऽयं बलिः परमपूजितः ।
सुतले वर्त्तते यस्य द्वारपालो हरिः स्वयम् ॥

वितलके नीचे सुतललोक है। इसमें पुण्यश्लोक बलिराज बसते हैं। श्रीभगवान्ने देवराज इन्द्रकी हितकामनासे वामनावतार धारण करके बलिको सुतललोकमें भेज दिया था। तबसे दैत्यगणसहित बलिराज इस लोकमें निवास करते हैं और स्वयं हरि निज प्रतिज्ञानुसार इनके द्वारपालका कार्य करते हैं। सुतललोकके नीचे तलातललोक है। यथा देवीभागवतमें—

ततोऽधस्तात्विवरकं तलातलमुदीरितम्।
दानवेन्द्रो मयोनाम त्रिपुराधिपतिर्महान्॥
त्रिलोक्याः शंकरेणायं पालितो दग्धपूस्त्रयः।
देवदेवप्रसादात्तु लब्धराज्यसुखास्पदः॥
आचार्यो मायिनां सोऽयं नानामायाविशारदः।
पूज्यते राक्षसैर्घोरैः सर्वकार्यसमृद्धये॥

सुतलके अधःस्थित तलातल लोकमें त्रिपुराधिपति दानवेन्द्र मय निवास करते हैं। भगवान् शंकरने उनकी तीन पुरियोंको दग्ध कर दिया था। उसके बादसे मयदानव देवदेव महादेवके प्रसादसे तलातललोकके अधिपति होकर वहीं निवास करते हैं। मयदानव मायावियोंके आचार्य्य तथा नाना मायामें निपुण हैं। भीषण राक्षसगण सकल कार्य्योंकी सिद्धिके लिये मय दानवकी पूजा करते हैं। इसके बाद कौन लोक है, इस विषयमें देवीभागवतमें लिखा है—

ततोऽधस्तात् सुविख्यातं महातलमिति स्फुटम्।
सर्पाणां काद्रवेयाणां गणः क्रोधवशो महान्॥

तलातललोकके नीचे सुप्रसिद्ध महातललोक है। दैत्योंके निवासस्थान इस लोकमें कद्रुकी सन्तान बड़े बड़े भीषण क्रोधी सर्प रहते हैं। महातलके नीचे रसातल है। यथा देवीभागवतमें:—

ततोऽधस्ताच्च विवरे रसातलसमाह्वये।
दैतेया निवसन्त्येव पणयो दानवाश्च ये॥
निवातकवचा नाम हिरण्यपुरवासिनः।
कालेया इति च प्रोक्ताः प्रत्यनीका हविर्भुजाम्॥

महातलके नीचे रसातललोक है। इसमें पणि नामक दानवगण निवास करते हैं, ये निवातकवच तथा हिरण्यपुरवासी हैं। इनको कालेय भी कहते हैं। वे सर्व देवताओंके घोर शत्रु हैं। रसातलके नीचे अन्तिम अधोलोक पाताल है। यथा देवीभागवतमें:—

ततोऽप्यधस्तात् पाताले नागलोकाधिपालकाः।
वासुकिप्रमुखाः शंखः कुलिकः श्वेत एव च॥
धनञ्जयो महाशंखो धृतराष्ट्रस्तथैव च।
महामर्षा महाभोगा निवसंति विषोल्वणाः॥

सबसे अधःस्थित लोक पातालमें नागलोकाधिपति वासुकिप्रमुख, शंख, कुलिक, धनञ्जय, महाशंख आदि महाक्रोधी

विषधर सर्पगण निवास करते हैं। पाताललोक ही असुरोंकी राजधानी है। आसुरी शक्तिका सर्वप्रधान केन्द्रस्थान यही लोक है। इस प्रकारसे आर्य्यशास्त्रमें सप्त अधोलोकोंका वर्णन किया गया है। इन सूक्ष्म लोकोंका वर्णन जो पुराणोंमें आता है, उनके विचित्र, अलौकिक और आश्चर्य्यजनक स्वरूप पढ़ कर अवश्य कई प्रकारकी शंकाएं हो सकती हैं। उन शंकाओंके समाधानार्थ कहा जाता है कि, पूज्यपाद महर्षिगण अपनी समाधिलभ्य योगदृष्टिके द्वारा इसी मृत्युलोकमें बैठ कर ही वहाँकी आवश्यकताको देख सकते थे। और इन लोकोंकी अलौकिक आश्चर्य्यजनक अवस्थाएँ जो वर्णित की गई हैं, वे सब भी समाधिभाषा द्वारा नहीं कही गई हैं, किन्तु लौकिक भाषा द्वारा कही गई हैं, जैसा कि पहले ही कहा गया है। सुतरां इस प्रकारकी शंकाओंका अवसर विज्ञ तथा विचारवान शास्त्ररहस्य समझनेवालोंके पास रह ही नहीं सकता है। अब नीचे सप्त ऊर्द्ध्व लोकोंका वर्णन किया जाता है।

श्रीभगवान् वेदव्यासने 'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्' इस योगसूत्रके भाष्यमें सप्त ऊर्द्ध्व लोकोंका उत्तम वर्णन किया है, जिसमेंसे कुछ अंश निम्न लिखितरूप है यथा—

"अवीचेः प्रभृति मेरुपृष्ठं यावदित्येष भूर्लोकः, मेरुपृष्ठादारभ्याध्रुवात् ग्रहनक्षत्रताराविचित्रोऽन्तरिक्ष-लोकः, तत्परः स्वर्लोकः पञ्चविधः, माहेन्द्रः तृतीयो

लोकः, चतुर्थः प्राजापत्यो महर्लोकः, त्रिविधो ब्राह्मः तद् यथा जनलोकस्तपोलोकः सत्यलोक इति । ब्राह्मस्त्रिभूमिको लोकः प्राजापत्यस्ततो महान् । माहेन्द्रश्च स्वरित्युक्तो दिवि ताराभुवि प्रजा इति संग्रहश्लोकः ।"

अवीचि नामक नरकस्थानसे मेरुपृष्ठपर्य्यन्त समस्त देश भूर्लोकके अन्तर्गत हैं । मेरुपृष्ठसे लेकर ध्रुव नक्षत्र पर्य्यन्त ग्रहनक्षत्रतारामय विचित्र लोकको भुवर्लोक या अन्तरिक्ष लोक कहते हैं । इसके अनन्तर स्वर्गलोक पाँच प्रकारके होते हैं । उनमेंसे माहेन्द्रलोक तृतीय लोक है, जिसको स्वर्लोक या इन्द्रलोक भी कहते हैं । इसके ऊपर महर्लोक है, जिसको प्राजापत्यलोक कहते हैं । इसके ऊपर तीन प्रकारके ब्राह्मलोक हैं । यथा जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक । संग्रह श्लोकमें इसका प्रमाण भी मिलता है यथा—ब्राह्मलोक त्रिविध है, प्राजापत्यलोक महर्लोक है, माहेन्द्रलोक स्वर्लोक है, तारागणयुक्त भुवर्लोक है और मनुष्यादि जीवयुक्त भूर्लोक है । भूर्लोकके विषयमें पहले ही वर्णन किया गया है और उसमें स्थूल मृत्युलोकके अतिरिक्त नरक, प्रेतादि सूक्ष्मलोक भी होते हैं, ऐसा भी कहा गया है । इसी प्रकार भुवर्लोकमें भी स्थूल नक्षत्र लोक तथा सूक्ष्म दैवलोक हैं । स्थूललोकके विषयमें योगभाष्यमें लिखा है यथा—

" ग्रहनक्षत्रतारकास्तु ध्रुवे निबद्धा वायुविक्षेपादिनियमेनोपलक्षितप्रचाराः सुमेरोरुपर्य्युपरि सन्निविष्टा विपरिवर्तन्ते ॥"

भुवर्लोकमें सूर्यादि ग्रहगण, अश्विनी भरणी आदि नक्षत्रगण तथा अन्यान्य तारागण ध्रुवताराके साथ सम्बन्ध-निबद्ध होकर मेरुपर्वतके ऊपर ऊपर वायुसञ्चार द्वारा नियमित-गतिसे सदा घूमते रहते हैं। इन स्थूल नक्षत्रलोकोंके सिवाय भूवर्लोकमें जो सूक्ष्मलोकसमूह हैं, उनमें देवयोनिके जीव निवास करते हैं। किन्नरलोक, विद्याधरलोक आदि इनके अन्तर्गत हैं। भुवर्लोकके ऊपर स्वर्लोक है। इसको महेन्द्रलोक कहते हैं। यह देवराजकी राजधानी है। इसमें कितने प्रकारके देवता रहते हैं, इसके विषयमें योगभाष्यमें लिखा है:—

" माहेन्द्रनिवासिनः षड्देवनिकायाः, त्रिदशा अग्निष्वात्ता याम्याः तुषिता अपरिनिर्मितवशवर्त्तिनः परिनिर्मितवशवर्त्तिनश्चेति, सर्वे संकल्पसिद्धा अणिमाद्यैश्वर्योपपन्नाः कल्पायुषो वृन्दारका कामभोगिन औपपादिकदेहा उत्तमानुकूलाभिरप्सरोभिः कृतपरिवाराः ॥"

महेन्द्रलोकमें छः प्रकारके देवता रहते हैं, यथा त्रिदश, अग्निष्वात्त, याम्य, तुषित, अपरिनिर्मितवशवर्त्ती और परिनिर्मितवशवर्त्ती। वे सभी सङ्कल्पसिद्ध हैं अर्थात् इच्छानुसार भोगसमर्थ हैं, अणिमादि ऐश्वर्योंसे युक्त हैं, कल्पान्त आयुर्युक्त हैं, पूज्य, कामभोगी और पितृमातृसम्बन्ध विना ही उत्पन्न दिव्य शरीरसे युक्त हैं। वे सुन्दरी अनुकूला अप्सराओंके साथ

सदा विहार करते रहते हैं । महाभारतके वनपर्वमें स्वर्लोकके विषयमें वर्णन है । यथा—

उपरिष्टाच्च स्वर्लोके योऽयं स्वरिति संज्ञितः ।
ऊर्द्ध्वगः सत्पथः शश्वद्देवयानचरो मुने ॥
नातप्ततपसः पुंसो नामहायज्ञभाजिनः ।
नानृता नास्तिकाश्चैव तत्र गच्छन्ति मुद्गल ॥
धर्मात्मनो जितात्मानः शान्ता दान्ता विमत्सराः ।
दानधर्मरता मर्त्याः शूराश्चाहवलक्षणाः ॥
तत्र गच्छन्ति धर्माग्र्यं कृत्वा शमदमात्मकम् ।
लोकान् पुण्यकृतान् ब्रह्मन् सद्भिराचरितान् नृभिः ॥
देवाः साध्यास्तथा विश्वे तथैव च महर्षयः ।
यमा धामाश्च मौद्गल्य गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥
एषां देवनिकायानां पृथक् पृथगनेकशः ।
भास्वन्तः कामसम्पन्ना लोकास्तेजोमयाः शुभाः ॥
त्रयस्त्रिंशत् सहस्राणि योजनानि हिरण्मयः ।
मेरुः पर्वतराड्यत्र देवोद्यानानि मुद्गल ॥
नन्दनादीनि पुण्यानि विहाराः पुण्यकर्मणाम् ।
न क्षुत्पिपासे न ग्लानिर्न शीतोष्णे भयं तथा ॥
बीभत्समशुभं वापि तत्र किञ्चिन्न विद्यते ।
मनोज्ञाः सर्वतोगन्धाः सुखस्पर्शाश्च सर्वशः ॥

शब्दाः श्रुतिमनोग्राह्या सर्वतस्तत्र वै मुने।
न शोको न जरा तत्र नायासपरिदेवने॥
ईदृशः स मुने लोकः स्वकर्मफलहेतुकः।
सुकृतैस्तत्र पुरुषाः सम्भवन्त्यात्मकर्मभिः॥
तैजसानि शरीराणि भवन्त्यत्रोपपद्यताम्।
कर्मजान्येव मौद्गल्य न मातृपितृजान्युत॥
न संस्वेदो न दौर्गन्ध्यं पुरीषं मूत्रमेव वा।
तेषां न च रजो वस्त्रं बाधते तत्र वै मुने॥
न म्लायन्ति स्रजस्तेषां दिव्यगन्धा मनोरमाः।
संयुज्यन्ते विमानैश्च ब्रह्मन्नेवंविधैश्च ते॥
ईर्ष्याशोकक्लमापेता मोहमात्सर्यवर्जिताः।
सुखस्वर्गजितस्तत्र वर्त्तयन्ते महामुने॥

ऊर्द्ध्व तृतीय लोकको स्वर्लोक कहते हैं। उसमें तपोहीन, यज्ञहीन, असत्यपरायण नास्तिकलोग नहीं जा सकते हैं। शान्त, दान्त, दानधर्मशील, जितात्मा, समरवीर पुरुष ही वहां जाते हैं। देवता, साध्य, विश्व, महर्षि, याम, धाम, गन्धर्व, अप्सरा आदिके तेजोमय लोकसमूह स्वर्लोकके अन्तर्गत हैं। वहांपर तीस हजार योजन व्याप्त पर्वतराज मेरुपर नन्दन आदि देवोद्यान-समूह स्थित हैं, जिनमें देवतागण विहार करते हैं। क्षुधा, पिपासा, ग्लानि, भय, किसी प्रकार बीभत्स या अशुभ वहां नहीं है। शीतल मन्द सुगन्ध पवन

तथा श्रुतिप्राणमोहन संगीतका आनन्द वहाँ मिलता रहता है। वहांपर शोक दुःख जरा या आयासाका लेशमात्र भी नहीं है। पुण्यबलसे वहां जानेवाले जीवको कर्मज तैजस शरीर प्राप्त होता है। पितामातासे वहां शरीर नहीं मिलता है। स्वेद, मल, मूत्र, दुर्गन्ध आदिसे वहांपर वस्त्र अपवित्र नहीं होता है। स्वर्गवासियोंके गलेमें जो दिव्यगन्धयुक्त माल्य रहता है, वह कभी मलिन नहीं होता है। वे दिव्य विमानपर चढ़कर घूमा करते हैं। ईर्षा, शोक श्रमादि वर्जित तथा मोहमात्सर्यशून्य होकर आनन्दके साथ लोग इस लोकमें निवास करते हैं। स्वर्लोकके विषयमें कठोपनिषद्में लिखा है:—

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥

स्वर्गलोकमें किसी प्रकारका भय नहीं है, वहां किसीको जराका भी भय नहीं है, बुभुक्षा, पिपासा तथा शोकसे रहित होकर स्वर्गवासिगण सदा आनन्द करते हैं। और भी स्मृतिमें—

यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतञ्च तत् सुखं स्वःपदास्पदम्॥

जहांपर सुख दुःखसे युक्त नहीं है, जहां सुखके अनन्तर भी दुःख नहीं होता है, और जहां इच्छा करते ही भोग्य पदार्थ प्राप्त होते हैं, वही स्वर्ग तथा वही स्वर्गसुख है। यही सब

स्वर्गलोकके शास्त्रकथित वृत्तान्त हैं। उसके ऊपर महर्लोक है, जिसके विषयमें योगभाष्यमें लिखा है—

महति लोके प्राजापत्ये पञ्चविधो देवनिकायः कुमुदाः ऋभवः प्रतर्दना अञ्जनाभा प्रचिताभा इति, एते महाभूतवशिनो ध्यानाहारा कल्पसहस्रायुषः।

प्राजापत्य महर्लोकमें कुमुद, ऋभव, प्रतर्दन, अञ्जनाभ और प्रचिताभ ये पांच प्रकारके देवता निवास करते हैं। पञ्चमहाभूत इनके वशवर्त्ती हैं। वे ध्यानाहार अर्थात् ध्यानमात्रसे ही तृप्त होते हैं, इनकी आयु कल्प सहस्र वर्ष है। इसके ऊपर तीन ब्रह्मलोक हैं, जिनमेंसे प्रथम ब्रह्मलोक अर्थात् जनलोकके विषयमें योगभाष्यमें लिखा है—

प्रथमे ब्रह्मणो जनलोके चतुर्विधो देवनिकायो ब्रह्मपुरोहिता ब्रह्मकायिका ब्रह्ममहाकायिका अमरा इति, एते भूतेन्द्रियवशिनः।

प्रथम ब्रह्मलोक अर्थात् जनलोकमें चार प्रकारकी देवजातियां बसती हैं, यथा ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, ब्रह्ममहाकायिक और अमर। पञ्चभूत तथा इन्द्रिय दोनों ही इनके वशीभूत हैं। स्मृतिशास्त्रमें लिखा है कि, सतीलोक भी इसी पञ्चमलोकके अन्तर्गत है, जहांपर सती स्त्रियां अपने पातिव्रत्यके बलसे पतित पतिका भी उद्धार करके इस लोकमें उनके साथ निवास करती हैं। यथा पराशर स्मृतिमें—

व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात्।
एवमुद्धृत्य भर्त्तारं तेनैव सह मोदते॥

जिस प्रकार मदारी सांपको विलसे खींचकर ऊपर उठाता है, उसी प्रकारसे सती स्त्री अपने तपोवलसे निजपतिको अधोगतिसे खींचकर पञ्चमलोकमें लेजाकर उसके साथ विहार करती है। जनलोकके ऊपर तपोलोक है, जिसके भी विषयमें योगभाष्यमें लिखा है यथा—

> द्वितीये तपसि लोके त्रिविधो देवनिकायः अभास्वरा महाभास्वराः सत्यमहाभास्वरा इति। एते भूतेन्द्रिय प्रकृतिवशिनो द्विगुणद्विगुणोत्तरायुषः, सर्वे ध्यानाहारा-ऊर्द्ध्वरेतसः ऊर्द्ध्वमप्रतिहतज्ञाना अधरभूमिष्वनावृत-ज्ञानविषयाः।

द्वितीय ब्रह्मलोक अर्थात् तपोलोकमें अभास्वर, महाभास्वर, सत्यमहा-भास्वर नामक त्रिविध देवजातिका निवास है। पञ्चभूत, इन्द्रिय, प्रकृति इन तीनोंपर इनका अधिकार है। अभास्वरसे महाभास्वरकी आयु द्विगुण और महाभास्वरसे सत्यमहाभास्वरकी आयु द्विगुणपरिमित है। वे सब ध्यानाहार तथा ऊर्द्ध्वरेता हैं, सत्यलोकमें भी इनके ज्ञान अप्रतिहत हैं, अधोलोकोंके ज्ञान तो इनके करतलगत हैं ही। शिवलोक, विष्णुलोक, मणिद्वीप अर्थात् देवीलोक आदि समस्त सगुण-ब्रह्मोपासना सम्बन्धीय लोक इसी तपोलोकके अन्तर्गत हैं, जहांपर सगुणब्रह्मोपासनाके फलसे उपासनासिद्ध पुरुषगण सालोक्यादि मुक्तिलाभ करते हैं। विष्णुलोकके विषयमें श्रीमद्भागवतके २ यस्कन्धमें लिखा है—

त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः।
ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम्॥
वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्त्तयः।
येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन् हरिम्॥
यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवाञ्छब्दगोचरः।
सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृड़यन् वृषः॥
यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः।
सर्वर्त्तुश्रीभिर्विभ्राजत् कैवल्यमिव मूर्तिमत्॥

वैकुण्ठलोकके निवासी वैकुण्ठपति विष्णुभगवान्की तरह चतुर्भुज शरीरधारी होते हैं, वे सब निष्काम भावसे श्रीभगवान् हरिकी आराधना करते हैं। वहांपर वेदान्तवेद्य धर्ममूर्त्ति विष्णुभगवान् शुद्ध सत्त्वगुणका अवलम्बन करके अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। वहांका उद्यान ही निःश्रेयस है, जो सकल ऋतुओंमें शोभामय तथा यथाकाम फलप्रसु होता है। इसी प्रकार मणिद्वीप आदिके विषयमें भी आर्यशास्त्रमें प्रमाण मिलता है। यथा देवीभागवतमें—

भक्तौ कृतायां यस्यापि प्रारब्धवशतो नग।
न जायते मम ज्ञानं मणिद्वीपं स गच्छति॥
तत्र गत्वाऽखिलान् भोगाननिच्छन्नपि चार्च्छति।
तदन्ते मम चिद्रूपज्ञानं सम्यग् भवेन्नग॥

इष्टोपासनाके पूर्ण होनेपर भी प्रारब्धवश जिस भक्तको

स्वरूपज्ञान नहीं प्राप्त होता है वह मणिद्वीपमें जाता है। वहां इच्छा न रहनेपर भी अनेक प्रकारके भोग उनको प्राप्त होते हैं और अन्तमें स्वरूपज्ञान प्राप्तिके बाद मुक्ति होती है। यह सब षष्ठ लोकके वृत्तान्त हैं। अन्तिम लोकको सत्यलोक या ब्रह्मलोक कहते हैं, जिसके विषयमें योगभाष्यमें लिखा है यथा—

तृतीये ब्रह्मणः सत्यलोके चत्वारो देवनिकायाः अच्युताः शुद्धनिवासाः सत्याभाः संज्ञासंज्ञिनश्चेति। अकृतभवनन्यासाः स्वप्रतिष्ठाः उपर्युपरिस्थिताः प्रधानवशिनो यावत्सर्गायुषः। तत्राच्युताः सवितर्कध्यानसुखाः, शुद्धनिवासाः सविचारध्यानसुखाः, सत्याभा आनन्दमात्रध्यानसुखाः, संज्ञासंज्ञिनश्चास्मितामात्रध्यानसुखाः, तेऽपि त्रैलोक्यमध्ये प्रतितिष्ठन्ति। त एते सप्त लोकाः।

तृतीय ब्रह्मलोक अर्थात् सत्यलोकमें चार प्रकारके देवतागण निवास करते हैं। यथा—अच्युत, शुद्धनिवास, सत्याभ और संज्ञासंज्ञी। इनका गृहविन्यास नहीं है, वे सब स्वःप्रतिष्ठ हैं। अच्युत देवताओंके ऊपर शुद्धनिवास देवतागण रहते हैं, इस प्रकारसे ऊपर ऊपर इनके निवासस्थान हैं। प्रधान अर्थात् प्रकृति इनके वशीभूत है और यावत् सृष्टि इनकी आयु होती है। अच्युतगण सवितर्क ध्यानमें तृप्त रहते हैं, शुद्धनिवासगण सविचार ध्यानमें, सत्याभगण

आनन्दमात्र ध्यानमें और संज्ञासंज्ञिगण अस्मितमात्रा ध्यानमें निमग्न रहते हैं। ये ही सत्यलोकके वृत्तान्त हैं। ब्रह्मलोकमें ऊपर कथित देवताओंके सिवाय और भी अनेक देवता तथा महर्षिगण निवास करते हैं। यथा महाभारतके वनपर्वमें :—

पुरस्ताद् ब्राह्मणा तत्र लोकास्तेजोमयाः शुभाः।
यत्र यान्त्यृषयो ब्रह्मन् पूताः स्वैः कर्मभिः शुभैः॥
ऋभवो नाम तत्रान्ये देवानामपि देवताः।
तेषां लोकात् परतो यान् यजन्तीह देवताः॥
स्वयंप्रभास्ते भास्वन्तो लोकाः कामदुघाः परे।
न तेषां स्त्रीकृतस्तापो न लोकैश्वर्यमत्सरः॥
न वर्त्तयन्त्याहुतिभिस्तेनाप्यमृतभोजनाः।
तथा दिव्यशरीरास्ते न च विग्रहमूर्तयः॥
न सुखे सुखकामास्ते देवदेवाः सनातनाः।
न कल्पपरिवर्त्तेषु परिवर्त्तन्ति वै तथा॥
जरा मृत्युः कुतस्तेषां हर्षः प्रीतिः सुखं न च।
न दुःखं न सुखं चापि रागद्वेषौ कुतो मुने॥
देवतानाञ्च मौद्गल्य वाञ्छिता सा गतिः परा।
दुष्प्राप्या परमा सिद्धिरगम्या कामगोचरैः॥

पूर्वदिशामें तेजोमय शुभ ब्रह्मलोक स्थित है। वहाँ पर पवित्र ऋषिगण अपने शुभ कर्मोंके फलसे जाते हैं। इस

लोकमें ऋभु नामक एक प्रकारके अति उत्तम कोटिके देवता रहते हैं, उनका लोक सर्वोत्कृष्ट है। देवतागण भी उनके निमित्त यज्ञ करते हैं। वे स्वयंप्रभ, भगवान्, इष्ट फल-प्रदाता हैं। उनको स्त्रीजन्य सन्ताप या ऐश्वर्य्यजन्य मात्सर्य स्पर्श नहीं कर सकता है। आहुति या अमृत किसीसे वे जीवन धारण नहीं करते हैं, दिव्य शरीरधारी स्थूलविग्रहशून्य होते हैं। इनमें किसी प्रकारकी सुखेच्छा नहीं होती है, वे देव-देव, सनातन हैं, कालमें भी इनका कोई परिवर्त्तन नहीं होता है। जरा, मृत्यु, हर्ष, शोक, दुःख, सुख, राग, द्वेष इनको कुछ भी स्पर्श नहीं करता है। यह दुर्लभ गति देवताओंको भी काङ्क्षणीय तथा विषयी जीवोंको सम्पूर्ण अगम्य है। वेदमें जो देवयान गतिका वर्णन है उसी गतिके द्वारा ज्ञान-प्रधान संस्कारके फलसे ब्रह्मलोकप्राप्ति होती है, अथवा उपासना द्वारा षष्ठ लोक प्राप्तिके बाद षष्ठ लोकमें उत्तम संस्कार अर्जन करके भी सप्तम लोकमें साधक आ सकते हैं। इसके विषयमें छान्दोग्योपनिषद्में लिखा है :—

> ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्य्यमाणपक्षमापूर्य्यमाणपक्षाद्यान् षडुदङ्ङेति मासांस्तान्। मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चंद्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनां ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति।

निवृत्तिसेवी जो मुनिगण अरण्यमें निवास करके श्रद्धाके साथ तपस्या, उपासना आदिका आचरण करते हैं, शरीर-त्यागानन्तर उनको उत्तरायण गति मिलती है। वे प्रथमतः अर्चिरभिमानिनी देवताके लोक, तदनन्तर क्रमशः दिवसाभिमानिनी देवताओंके लोक, आपूर्यमाणपक्ष देवलोक, षण्मास देवलोक, संवत्सर देवलोक, आदित्यदेवलोक और चन्द्रदेवलोकको अतिक्रम करके विद्युत् देवलोकको प्राप्त होते हैं। वहाँसे एक अमानव पुरुष आकर उन्हें ब्रह्म लोकमें ले जाते हैं। इसीको देवयान पन्था कहते हैं। इस प्रकारसे ब्रह्मलोकमें पहुँच कर वे सब ब्रह्मलोकमें वर्षोंतक निवास करते हैं। पश्चात् ब्रह्माके लयके साथ ही साथ परब्रह्ममें विलीन हो जाते हैं। यथा स्मृतिमें :—

ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम्॥

वे ब्रह्मलोकमें परमात्माका साक्षात्कार लाभ करके ब्रह्माके लयके साथ परब्रह्ममें विलीन होकर निर्वाणमुक्तिपद लाभ कर लेते हैं। इस विषयमें मुण्डकोपनिषद्में लिखा है, यथा :—

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्य्यां चरन्तः।
सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥

भिक्षान्नग्रहण करते हुए जो शान्त विद्वान् पुरुषगण अरण्यमें निवास करते हैं और श्रद्धासहित तपस्यादि करते हैं वे सूर्य्यद्वारपथ् अर्थात् देवयानपथ द्वारा अव्यय अमृत पुरुषके लोक ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। वेदान्तज्ञानसे लब्धतत्त्व, संन्यासयोगके द्वारा शुद्धसत्त्व यतिगण ब्रह्मलोकमें ब्रह्माकी आयुःकाल तक निवास करके उन्हींके साथ परब्रह्ममें विलीन हो मुक्त हो जाते हैं। यही सब ब्रह्मलोकके अधिवासी तथा वहाँसे मुक्तिलाभका वृत्तान्त है। ब्रह्मलोकमें कैसे कैसे पदार्थ ब्रह्मलोकवासियोंको प्राप्त होते हैं, इसके कौषितकी तथा छान्दोग्योपनिषत्कथित प्रचुर वर्णन धर्मकल्पद्रुमके 'मुक्तितत्त्व' नामकअध्यायमें पहले ही बताये गये हैं, अतः पुनरुक्ति निष्प्रयोजन है।

चतुर्दशलोक समीक्षा प्रसंगमें चतुर्दश लोकोंका वर्णन करके अब उनके उत्पत्ति तथा विनाशकालपर विचार किया जाता है। लोकोंकी उत्पत्तिके विषयमें श्रीभगवान् मनुने कहा है:—

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्॥

श्रीभगवान्के अन्तःकरणमें प्रजासृष्टिकी इच्छा होनेपर प्रथमतः एक स्वर्ण वर्ण अण्ड और उसमें प्रजापति ब्रह्माको

उत्पत्ति होती है। ब्रह्मा उत्पन्न होकर उस अण्डपर अपने मानके एक वर्ष तक निवास करते हुए अपने ही ध्यानसे उस अण्डको द्विधा विभक्त कर देते हैं। उसके एक भागसे ऊपरके सातलोक और दूसरे भागसे सप्त अधोलोककी उत्पत्ति होती है। इन प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि, महाप्रलयानन्तर सृष्टिके प्राक्कालमें चतुर्दश लोकोंकी उत्पत्ति होती है। तदनन्तर सृष्टि-नियमानुसार इन सब लोकोंमें पूर्ववर्णित नाना श्रेणीके जीव, ऋषि, देवता, पितृ आदि उत्पन्न हो जाते हैं। और श्रीभगवान्‌के स्थिति नियमानुसार ब्रह्माण्डकी स्थितिदशामें इन सब लोक तथा लोकवासियोंकी स्थिति रहती है। तदनन्तर प्रलयदशामें प्रलयनियमानुसार इन लोकोंका नाश भी हो जाता है। वह नियम क्या है, इसके विषयमें शास्त्रमें निम्नलिखित वर्णन मिलता है। यथा विष्णुपुराणमें :—

> ब्राह्मो नैमित्तिको नाम तस्यान्ते प्रतिसञ्चरः।
> तदा हि दह्यते सर्वं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम्॥
> जनं प्रयान्ति तापार्ता महर्लोकनिवासिनः॥

चार युग सहस्रवार बीत जानेपर ब्रह्माका एक दिन होता है। दिनके बाद जब रात्रि आती है तब ब्रह्मा निद्रित हो जाते हैं, उस समय नैमित्तिक प्रलयका उदय होता है, जिसमें नीचेके सात लोक और ऊपरके तीन लोक अर्थात् भूः, भुवः, स्वः लोक दग्ध हो जाते हैं। और महर्लोकवासी सिद्धगण दह्यमान नीचेके लोकोंके उत्तापसे दुःखित होकर जनलोकको

चले जाते हैं। अतः सिद्ध हुआ कि, नैमित्तिक प्रलयके समय नीचेके सात लोक और ऊपरके तीन लोक इस प्रकारसे दस लोक नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर विष्णुके निद्रावस्थामें नीचेके सात लोक और ऊपरके चार लोक अर्थात् महर्लोक तक नष्ट हो जाते हैं। यही सब नैमित्तिक प्रलयमें लोकनाशकी व्यवस्था है। इस प्रकारसे नैमित्तिक प्रलय और आंशिक लोकनाश कई बार होते होते जब अन्तमें महाप्रलय या प्राकृतिक प्रलयका उदय होता है, तब चौदह लोकोंका एक बार ही नाश हो जाता है। यथा श्रीमद्भागवतके १२ स्कन्दमें:—

एष प्राकृतिको राजन्! प्रलयो यत्र लीयते।
अण्डकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते॥

अर्थात् प्राकृतिक प्रलयके समय ब्रह्माण्डशरीरका समस्त उपादान अलग अलग होकर महाप्रकृतिमें समस्त ब्रह्माण्डप्रकृतिका विलय हो जाता है। इसीको सांख्यदर्शनमें "नाशः कारणलयः" निज कारणमें लय होना ही सृष्टिका नाश है, इस प्रकारसे वर्णित किया गया है। अतः शास्त्रप्रमाणसे निश्चय हुआ कि, महाप्रलयानन्तर ब्रह्माण्डसृष्टिके समय सप्त अधोलोक तथा ऊर्द्ध्वलोकोंकी उत्पत्ति होती है, नैमित्तिक प्रलयमें पितामह ब्रह्माकी निद्राके समय दस लोकोंका नाश तथा भगवान् विष्णुकी निद्राके समय ग्यारह लोकोंका नाश होता है। और महाप्रलयकालमें जब ब्रह्मा विष्णु रुद्र सभी ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं, तब चौदह लोक एक बार ही नष्ट होकर स्वकारणमें

विलीन हो जाते हैं। यही श्रुति स्मृति पुराणादि प्रतिपादित चतुर्दश लोकोंकी समीक्षा है।

सारांश यह है कि, अनादिअनन्तरूपधारी सर्वव्यापक विराट्पुरुष श्रीभगवान्‌के विराट् देहमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं और रहते हैं। उनमेंसे हमारे ब्रह्माण्डकी अवस्था, स्वरूप और स्थितिका जो कुछ वर्णन हमारे वेदादि शास्त्रोंमें पाया जाता है उसका संक्षेप वर्णन यह है कि, हमारे ब्रह्माण्डके सृष्टि स्थिति लय करनेवाले त्रिदेव ही सगुण ब्रह्मरूपमें ब्रह्माण्डमें अधिष्ठान कर अपना अपना कार्य्य करते हैं। हमारा यह मृत्युलोक हमारे इस ब्रह्माण्डके चौदहवें अंशका एक चौथा अंश है। हमारे चारों ओर प्रेतलोक है। वह भी सूक्ष्मलोक है। उसके अतिरिक्त हमारे इस भूलोकसे सम्बन्धयुक्त और दो सूक्ष्म लोक हैं, जिनमेंसे दुःखभोग लोक नरक और सुखभोगलोक पितृलोक कहाता है। इस प्रकारसे भूलोकके चार अंग हुए यथा—मृत्युलोक, प्रेतलोक, नरकलोक और पितृलोक। इसके अतिरिक्त छः और ऊपरके लोक और सात नीचेके अधोलोक ये सभी सूक्ष्मलोक हैं। हमारा यह मृत्युलोक सबका केन्द्र है। क्योंकि यहीं मातृगर्भमें जन्म लेना पड़ता है, अन्य लोकोंमें मातृगर्भमें जन्म लेना नहीं पड़ता है। आवागमनचक्रमें घूमते हुए सभी लोकोंके जीवोंको इसी लोकमें आना पड़ता है। क्योंकि पृथिवी कर्मभूमि है, यहां अच्छे बुरे कर्मोंके संग्रह करनेका

मौका अधिक मिलता है, अन्य सब लोक भोगभूमि होनेके कारण उनमें ऐसा मौका अधिक नहीं मिलता है। शास्त्रमें जो सात समुद्रोंका वर्णन है, उनमेंसे केवल लवणसमुद्र मृत्यु-लोकका समुद्र है। बाकी छः समुद्र सूक्ष्मलोकसम्बन्धीय तथा अन्य प्रकारके हैं। शास्त्रोंमें जो सप्त द्वीपका वर्णन है, उनमें से केवल जम्बुद्वीपका एक विभाग हमारा मृत्युलोक है, बाकी सब सूक्ष्मलोक हैं। इस कारण यदि लौकिक भूगोलशास्त्रके साथ पुराणोक्त ब्रह्माण्डके सब वर्णनोंकी एकता न मिले तो पाठकोंको भ्रममें नहीं पड़ना चाहिये। दूसरी ओर वेद पुराणादि शास्त्रोंमें जो नाना विभिन्न लोकोंकी वर्णनशैली पाई जाती है, उन वर्णनशैलियोंको ग्रन्थान्तरमें कहे हुए समाधि-भाषा परकीयभाषा तथा लौकिकभाषात्रयमेंसे लौकिकभाषाके लक्षणसे मिलाकर समझना चाहिये। इस प्रकारसे विचार करनेपर किसीके भी चित्तमें कोई शङ्का नहीं रह सकेगी तथा पूज्यपाद महर्षियोंके त्रिकालदर्शी होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण अनु-सन्धित्सु जनोंको भली भाँति विदित हो सकेगा।

इति शुभम्।

श्रीविश्वनाथो जयति ।

धर्मप्रचारका सुलभ साधन।

समाजकी भलाई! मातृभाषाकी उन्नति !!

देशसेवाका विराट् आयोजन !!!

इस समय देशका उपकार किन उपायोंसे होसकता है? संसारके इस छोरसे उस छोर तक चाहे किसी चिन्ताशील पुरुषसे यह प्रश्न कीजिये, उत्तर यही मिलेगा कि, धर्मभावके प्रचारसे; क्योंकि धर्मने ही संसारको धारण कर रक्खा है। भारतवर्ष किसी समय संसारका गुरु था, आज वह अधः-पतित और दीन हीन दशामें क्यों पच रहा है? इसका भी उत्तर यही है कि, वह धर्मभावको खो बैठा है। यदि, हम भारतसे ही पूछें कि, तू अपनी उन्नतिके लिये हमसे क्या चाहता है? तो वह यही उत्तर देगा कि, मेरे प्यारे पुत्रों! धर्मभावकी वृद्धि करो। संसारमें उत्पन्न होकर जो व्यक्ति कुछ भी सत्कार्य करनेके लिये उद्यत हुए हैं, उन्हें इस बातका पूर्ण अनुभव होगा कि, ऐसे कार्योंमें कैसे विघ्न और कैसी बाधाएँ उपस्थित हुआ करती हैं। यद्यपि धीर पुरुष उनकी पर्वाह नहीं करते और यथासम्भव उनसे लाभ ही उठाते हैं, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि, उनके कार्योंमें उन विघ्न-बाधाओंसे कुछ रुकावट अवश्य ही हो जाती है। श्रीभारत-धर्म्ममहामण्डलके धर्मकार्य्यमें इस प्रकारकी अनेक बाधाएँ होनेपर भी उसे जनसाधारणका हित-साधन करनेका सर्व-

शक्तिमान् भगवान्ने सुअवसर प्रदान कर दिया है। भारत अधार्मिक नहीं है, हिन्दुजाति धर्मप्राण जाति है, उसके रोम रोममें धर्मसंस्कार ओतप्रोत हैं। केवल वह अपने रूपको, धर्मभावको, भूल रही है। उसे अपने स्वरूपकी पहिचान करा देना-धर्मभावको स्थिर रखना ही श्रीभारतधर्ममहा-मण्डलका एक पवित्र और प्रधान उद्देश्य है। यह कार्य्य २२ वर्षोंसे महामण्डल कर रहा है और ज्यों ज्यों उसको अधिक सुअवसर मिलेगा, त्यों त्यों वह जोर शोरसे यह काम करेगा। उसका विश्वास है कि, इसी उपायसे देशका सच्चा उपकार होगा और अन्तमें भारत पुनः अपने गुरुत्वको प्राप्त कर सकेगा।

इस उद्देश्यसाधनके लिये सुलभ दो ही मार्ग हैं। (१) उपदेशकों द्वारा धर्म-प्रचार करना और (२) धर्म-रहस्य-सम्बन्धीय मौलिक पुस्तकोंका उद्धार और प्रकाश करना। महामण्डलने प्रथम मार्गका अवलम्बन आरम्भसे ही किया है और अब तो उपदेशक महाविद्यालय स्थापित कर, महामण्डलने वह मार्ग स्थिर और परिष्कृत कर लिया है। दूसरे मार्गके सम्बन्धमें भी यथायोग्य उद्योग आरम्भसे ही किया जा रहा है, विविध ग्रन्थोंका संग्रह और निर्माण करना, मासिकपत्रि-काओंका सञ्चालन करना, शास्त्रीय ग्रंथोंका आविष्कार करना, इस प्रकारके उद्योग महामण्डलने किये हैं और उनमें सफलता भी प्राप्तकी है, परन्तु अभी तक यह कार्य संतोषजनक नहीं हुआ है। महामण्डलने अब इस विभागको उन्नत करनेका विचार किया है। तदनुसार दस लाखके मूलधनसे भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड नामकी कम्पनी महामण्डलने स्थापितकी है, उसके द्वारा कमसे कम दो लाख

मूलधन लगाकर पुस्तकप्रकाशनका कार्य प्रारम्भ हो गया है। महामण्डलने अपनी संरक्षकतामें परिचालित निगमागमबुक-डिपो भी उक्त सिण्डिकेटको दे दिया है।

उपदेशकों द्वारा जो धर्मप्रचार होता है, उसका प्रभाव चिरस्थायी होनेके लिये उसी विषयकी पुस्तकोंका प्रचार होना परम आवश्यक है; क्योंकि वक्ता एक दो बार जो कुछ सुना देगा, उसका मनन विना पुस्तकोंका सहारा लिये नहीं हो सकता। इसके सिवाय सब प्रकारके अधिकारियोंके लिये एक वक्ता कार्य्यकारी नहीं हो सकता। पुस्तकप्रचार द्वारा यह काम सहल हो जाता है। जिसे जितना अधिकार होगा, वह उतने ही अधिकारकी पुस्तकें पढ़ेगा और महा-मण्डल भी सब प्रकारके अधिकारियोंके योग्य पुस्तकें निर्माण करेगा। सारांश, देशकी उन्नतिके लिये, भारतगौरवकी रक्षाके लिये और मनुष्योंमें मनुष्यत्व उत्पन्न करनेके लिये महामण्डलने अब पुस्तकप्रकाशन विभागको उक्त सिण्डिकेट द्वारा अधिक उन्नत करनेका विचार किया है और उसकी सर्वसाधारणसे प्रार्थना है कि, वे ऐसे सत्कार्य्यमें इसका हाथ बटावें एवं इस ज्ञानप्रचारक कार्यमें इसकी सहायता कर, अपनी ही उन्नति कर लेनेको प्रस्तुत हो जावें।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके व्यवस्थापक पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजकी सहायतासे काशीके प्रसिद्ध विद्वानोंके द्वारा सम्पादित होकर प्रामाणिक, सुबोध और सुदृश्यरूपसे यह ग्रन्थमाला निकलेगी। ग्रन्थमालाके जो ग्रंथ छपकर प्रकाशित हो चुके हैं, उसकी नीचे सूची प्रकाशित की जाती है।

स्थिर ग्राहकोंके नियम ।

(१) इस समय हमारी ग्रंथमालामें निम्नलिखित ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं :—

मन्त्रयोगसंहिता (भाषानुवाद-सहित) १)
हठयोगसंहिता „ ॥।)
योगदर्शन (भाषाभाष्य-सहित) २)
दैवीमीमांसादर्शन प्रथम भाग (भाषाभाष्यसहित) १।)
कल्किपुराण (भाषानुवाद-सहित) १॥)
नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत १)
प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत २)
उपदेश पारिजात (संस्कृत) ॥)
भारतधर्ममहामण्डल रहस्य १)
धर्मकल्पद्रुम प्रथम खण्ड २)
„ द्वितीय खण्ड १॥)
„ तृतीय खण्ड २)
„ चतुर्थ खण्ड २)
„ पञ्चम खण्ड २)
„ षष्ठ खण्ड १॥)
श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम खंड (भाषाभाष्यसहित) १)
गुरुगीता (भाषानुवादसहित) ।)
शम्भुगीता (भाषानुवाद-सहित) ॥।)
धीशगीता „ ॥)
शक्तिगीता „ ॥।)
सूर्य्यगीता „ ॥)
विष्णुगीता „ ॥।)
संन्यासगीता „ ॥।)
रामगीता (भाषानुवाद और टिप्पणी सहित सजिल्द) २॥)
आचारचन्द्रिका ॥)
नीतिचन्द्रिका ॥)
धर्मचन्द्रिका १)
साधन चन्द्रिका १॥)
नित्यकर्म चन्द्रिका ।)

(२) इनमेंसे जो कमसे कम ४) मूल्यकी पुस्तकें पूरे मूल्यमें खरीदेंगे अथवा स्थिरग्राहक होनेका चन्दा १) भेज देंगे उन्हें शेष और आगे प्रकाशित होनेवाली सब पुस्तकें ¾ मूल्यमें दी जायँगी।

(३) स्थिर ग्राहकोंको मालामें ग्रथित होनेवाली हर एक पुस्तक खरीदनी होगी। जो पुस्तक इस विभाग द्वारा छापी जायगी, वह एक विद्वानोंकी कमेटी द्वारा पसन्द करा ली जायगी।

(४) हर एक ग्राहक अपना नम्बर लिखकर या दिखाकर हमारे कार्यालयसे अथवा जहां वह रहता हो वहां महामण्डलकी शाखासभा हो, तो वहांसे, स्वल्प मूल्यपर पुस्तकें खरीद सकेगा।

(५) श्रीमहामण्डलकी जो धर्मसभा इस धर्मकार्य्यमें सहायता करना चाहे और जो सज्जन इस ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहक होना चाहें, वे मेरे नाम पत्र भेजनेकी कृपा करें।

गोविन्द शास्त्री दुगवेकर, अध्यक्ष शास्त्रप्रकाश विभाग,
श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्यालय,
मार्फत भारतधर्मसिण्डिकेट लिमिटेड भवन,
स्टेशनरोड, जगतगञ्ज, बनारस शहर।

इस विभाग द्वारा प्रकाशित समस्त धर्मपुस्तकोंका विवरण।

सदाचारसोपान—यह पुस्तक कोमलमति बालक बालिकाओंके धर्मशिक्षाके लिये प्रथम पुस्तक है। अपने बच्चोंकी धर्मशिक्षाके लिये इस पुस्तकको हर एक हिन्दूको मँगवाना चाहिये। मूल्य -) एक आना।

कन्याशिक्षासोपान—कोमलमति कन्याओंको धर्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। मूल्य -)

धर्मसोपान—यह धर्मशिक्षा विषयक बड़ी उत्तम पुस्तक है। बालकोंको इससे धर्मका साधारण ज्ञान भली भांति हो

जाता है। धर्मशिक्षा-पानेकी इच्छा करनेवाले सज्जन भी अवश्य इस पुस्तकको मँगावें। मूल्य ।) चार आना।

ब्रह्मचर्य्यसोपान—ब्रह्मचर्य्यव्रतकी शिक्षाके लिये यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है। मूल्य ≡) तीन आना।

साधनसोपान—यह पुस्तक उपासना और साधनशैलीकी शिक्षा प्राप्त करनेमें बहुत ही उपयोगी है। यह पुस्तक ऐसी उपकारी है कि, बालक और वृद्ध समानरूपसे इससे साधन-विषयक शिक्षा-लाभ कर सकते हैं। मूल्य ।)

शास्त्रसोपान—सनातनधर्मके शास्त्रोंका संक्षेप सारांश इस ग्रंथमें वर्णित है। मूल्य ।) चार आना।

धर्मप्रचारसोपान—यह ग्रन्थ धर्मोपदेशक देनेवाले उपदेशक और पौराणिक पण्डितोंके लिये बहुत हितकारी है। मूल्य ≡) तीन आना।

राजशिक्षासोपान—राजा महाराज और उनके कुमारोंको धर्मशिक्षा देनेके लिये यह ग्रंथ बनाया गया है, परन्तु सर्वसाधारणकी धर्मशिक्षाके लिये भी यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है। मूल्य ≡) तीन आना।

मन्त्रयोगसंहिता—योगविषयक भाषानुवादसहित ऐसा अपूर्व ग्रंथ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें मंत्रोंका स्वरूप और उपास्यनिर्णय बहुत अच्छा किया गया है और नास्तिकोंके मूर्तिपूजा, मन्त्रसिद्धि आदि विषयोंमें जो प्रश्न होते हैं उनका अच्छा समाधान है। मूल्य १) एक रुपया।

हठयोग संहिता—योगविषयक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें हठयोगके ७ अङ्ग और क्रमशः उनके लक्षण, साधन प्रणाली आदि सब अच्छी तरह वर्णन किये गये हैं। मूल्य ॥।) बारह आना।

योगदर्शन—हिन्दीभाष्य सहित। इस प्रकारका हिन्दी भाष्य और कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। प्रत्येक सूत्रका भाष्य प्रत्येक सूत्रके आदिमें भूमिका देकर ऐसा क्रमबद्ध बना दिया गया है कि, जिससे पाठकोंको ऐसा प्रतीत होगा कि महर्षि सूत्रकारने जीवोंके क्रमाभ्युदय और निःश्रेयसके लिये मानो एक महान् राजपथ निर्माण कर दिया है।
मूल्य २) दो रुपया।

दैवीमीमांसा दर्शन प्रथम भाग—वेदके उपासनाकाण्डका यह अङ्गिरा दर्शन है। इस प्रथम भागमें इस दर्शन शास्त्रके प्रथम दो पाद हिन्दी अनुवाद और हिन्दी भाष्यसहित प्रकाशित हुए हैं। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।

कल्किपुराण—कल्किपुराणका नाम किसने नहीं सुना है। वर्तमान समयके लिये यह बहुत हितकारी ग्रन्थ है। विशुद्ध हिन्दी अनुवाद और विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। धर्म जिज्ञासुमात्रको पढ़ना उचित है। मूल्य १॥)

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत—भारतका प्राचीन गौरव और आर्यजातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है। मू० १)

उपदेशपारिजात—यह संस्कृत गद्यात्मक अपूर्व ग्रंथ है।
मूल्य ॥) आठ आना

श्रीभारतधर्ममहामण्डलरहस्य—धर्मके गूढ़ तत्त्व भी इसमें बहुत अच्छी तरहसे बताये गये हैं। मूल्य १) एक रुपया

श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम खण्ड—हिन्दी भाष्य सहित। गीताका अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतरूपी त्रिविध स्वरूप, प्रत्येक श्लोका त्रिविध अर्थ और सब प्रकारके अधिकारियोंके समझने योग्य गीता-विज्ञानका विस्तारित विवरण इस भाष्यमें मौजूद हैं। मूल्य १) एक रुपया।

तत्त्वबोध—भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित। यह मूल ग्रन्थ श्रीशङ्कराचार्यकृत है। मूल्य =) दो आना।

स्तोत्रकुसुमाञ्जलि मूल—इसमें पञ्चदेवता, अवतार और ब्रह्मकी स्तुतियोंके साथ साथ आज कलकी आवश्यकतानुसार धर्मस्तुति, गंगादि पवित्र स्थानोंकी स्तुति, वेदान्तप्रतिपादक स्तुतियाँ और काशीकेप्रधान देवता श्रीविश्वनाथादिकी स्तुतियाँ हैं। मूल्य ।)

निगमागमचन्द्रिका—प्रथम और द्वितीय भागकी दो पुस्तकें धर्म्मानुरागी सज्जनोंको मिल सकती हैं। प्रत्येकका मूल्य १) एक रुपया।

(१) वर्ल्डस इटरनल रिलिजन—यह सम्प्रति अंग्रेजी भाषामें एक ऐसा ग्रन्थ छप गया है, जिसके द्वारा सब अंग्रेजी पढ़े व्यक्तियोंको सनातनधर्मका महत्त्व, उसका सर्वजीव हितकारी स्वरूप, उसके सब अङ्गोंका रहस्य, उपासनातत्त्व, योगतत्त्व, काल और सृष्टितत्त्व, कर्मतत्त्व, वर्णाश्रमधर्मतत्त्व इत्यादि सब बड़े २ विषय अच्छी तरह समझनेमें आ जावेंगे। इसका मूल्य राजसंस्करणका ५) और साधारण संस्करणका ३) है। अंग्रेजी भाषामें आजतक सनातनधर्मका कोई भी ग्रन्थ ऐसा प्रकाशित नहीं हुआ था। ८ त्रिवर्ण चित्र भी इसमें दिये गये हैं।

व्रतोत्सव चन्द्रिका—(अर्थात् हिन्दू त्यौहारोंका शास्त्रीय विवेचन)। लेखक महामहोपदेशक पं० श्रवणलालजी वाणी विभूषण। मूल्य ३)।

मैनेजर, निगमागमबुकडीपो।
श्रीभारतधर्म सिण्डिकेट भवन, स्टेशनरोड
जगतगंज, बनारस (शहर)

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महा...

कार्यसम्पादिका:—श्रीआर्यमहिला हितकारिणी महा-परिषद्की सम्पादकीय समिति।

भारतवर्षकी प्रतिष्ठित रानी महारानियां तथा विदुषी भद्र महिलाओंके द्वारा, श्रीभारतधर्ममहामण्डलकी निरीक्षकतामें आर्यमाताओंकी उन्नतिकी सदिच्छासे यह महापरिषद् श्रीकाशी-पुरीमें स्थापित की गई है। इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(क) आर्यमहिलाओंकी उन्नतिके लिये नियमित कार्यव्यवस्थाका स्थापन (ख) श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित पवित्र नारीधर्मका प्रचार (ग) स्वधर्मानुकूल स्त्री-शिक्षाका प्रचार (घ) पारस्परिक प्रेम स्थापित कर हिन्दु सतियोंमें एकताकी वृद्धि (ङ) सामाजिक कुरीतियोंका संशोधन, और (च) हिन्दीकी उन्नति करना।

परिषद्के विशेष नियम:—१म—सब प्रकारकी सभ्याओंको इसकी मुखपत्रिका "आर्यमहिला" मुफ्त मिलेगी। २य-स्त्रियाँ ही सभ्याएँ हो सकेंगी। ३य—यदि पुरुष भी परिषद्को किसी तरहकी सहायता करें तो वे पृष्ठपोषक समझे जायँगे और उनको भी पत्रिका मुफ्त मिला करेगी। ४र्थ—परिषद्की चार प्रकारकी सभ्याओंके ये नियम हैं:—

(क) कमसे कम १५०) एक बार देनेपर "आजीवन-सभ्या" (ख) १०००) एक ही बार या प्रतिमास १० देनेपर "संरक्षक-सभ्या" (ग) १०) वार्षिक देनेपर "सहायक सभ्या" और (घ) ५) वार्षिक देनेपर वा असमर्थ होनेसे ३) ही वार्षिक देनेपर "सहयोगिसभ्या" आर्यमहिला मात्र बन सकती हैं।

पत्र व्यवहारका पता—

कार्याध्यक्षा, आर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषत्कार्यालय,
श्रीमहामण्डल भवन, जगत्‌गञ्ज, बनारस।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्यालय काशीसे एक हिन्दी भाषा और दूसरा अंग्रेजी भाषाका इस प्रकार दो पत्र, प्रान्तीय कार्यालयोंसे अन्यान्य भाषाओंके कई मासिकपत्र प्रकाशित होते हैं।

श्रीमहामण्डलके पाँच श्रेणीके सभ्य होते हैं। यथाः—स्वाधीन नरपति और प्रधान प्रधान धर्माचार्यगण संरक्षक होते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंके बड़े बड़े जमींदार सेठ साहूकार आदि सामाजिक नेता उस उस प्रान्तके चुनावके द्वारा प्रतिनिधि सभ्य चुने जाते हैं। प्रत्येक प्रान्तोंके अध्यापक ब्राह्मणोंमेंसे उस उस प्रान्तीय मण्डल द्वारा चुने जाकर धर्मव्यवस्थापक सभ्य बनाये जाते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंसे पांच प्रकारके सहायक सभ्य लिये जाते हैं, विद्यासम्बन्धीय सहायक सभ्य, धर्मकार्य्य करनेवाले सहायक सभ्य, महामण्डल प्रान्तीय मण्डल और शाखासभाओंको धनदान करनेवाले सहायक सभ्य, विद्वान् ब्राह्मण सहायक सभ्य और साधु संन्यासी सहायक सभ्य। पांचवीं श्रेणीके सभ्य साधारण सभ्य कहाते हैं जो ३॥) वार्षिक देनेसे हिन्दू स्त्रीपुरुष हो सकते हैं। इन सब प्रकारके सभ्यों और श्रीमहामण्डलका प्रान्तीय मण्डल, शाखासभा और संयुक्त सभाओंको श्रीमहामण्डलका हिन्दी अथवा अंग्रेजी मासिकपत्र विना मूल्य दिया जाता है। इसके अतिरिक्त समाजहितकारीकोषके द्वारा उनके उत्तराधिकारियोंको विशेष लाभ मिलता है। पत्रव्यवहार इस पतेपर करें—

प्रधानाध्यक्ष,

श्रीभारतधर्ममहामण्डल, जगत्गञ्ज, काशी